कहानी

चटापटी

डॉ. एस.डी. वैष्णव

नेहरू जी ने कहा था,'आराम हराम है'. उनका मकसद था लोगों को अपने कार्य के प्रति कर्मठ बनाना. कुछ लोगों ने उनके इस ध्येय वाक्य का मर्म ही उल्टा निकाला-'हराम में आराम है'.फिर आगे इस तरह का आराम उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गया.

राज्य में चुनाव होने वाले थे. चुनावी आचार संहिता लगने से पहले नेताजी ने अपने मातहत विभागों और अफसरों को रोड बनाने के टेंडर निकालने का आदेश दिया. एक दिन नेताजी शाम को शहर में बड़ी जनसभा में भाषण दे रहे थे. उन्होंने दुष्यंत कुमार को याद करते हुए अपनी बात शुरू की-'हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए,इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए..' भीड़ ने समवेत स्वर में हुँकार भरी, ..हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए. और फिर लगातार नेताजी जिंदाबाद..नेताजी जिंदाबाद के नारे गूँजने लगे.

दुष्यंत का लिखा-कहा लोगों में जोश भरता है, इसलिए दुष्यंत नेताओं के लिए बहुत उपयोगी है. लेकिन इस शेर के बाद एक दर्शक बिदक गया. उसके हृदय में कोई कसक रह गई थी. उसने कहा,नेताजी! पिछले चुनाव में आपने जो विकास की गंगा निकाली थी; उसका पानी अब तक सड़कों पर भरा पड़ा है, पहले सड़कें दुरूस्त करवाइए. इस अव्यवस्था की जो आग पिछले पाँच सालों से मेरे भीतर जल रही है,पहले उसे बुझाने का यत्न करें.

भरी सभा में अपनी कमजोरी उजागर होती देखकर, नेताजी ने वहाँ पर मुस्तैद अपने दो दबंग कार्यकर्ताओं को कनखियों से इशारा किया. पलभर में उस जोशीले कार्यकर्ता की आवाज उस भीड़ में कहीं खो-सी गई.

हमारे यहाँ 'पैचवर्क कला' या 'चटापटी' कला जिसमें कपड़े को काटकर विशेष प्रकार की टेढ़ी-मेढ़ी आकृति बनाई जाती हैं; बहुत प्रसिद्ध है. सभी अफ़सर भी 'पैचवर्क कला' के बहुत मर्मज्ञ होते हैं. चटापटी करते हैं. समय-समय पर रोड पर विशेष प्रकार की आकृति बनाते रहते हैं. इधर जनता आस लगाए रहती हैं कि शहर में जल्दी ही कोई प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति स्तर का सम्मानित व्यक्ति आएगा, तब फिर हमारे साथ रोड भी साँस लेने लगेगी.

गाँवों में चुनाव के समय यूरिया खाद और सिंचाई के लिए समय पर बिजली उपलब्ध नहीं होने का मुद्दा नेताओं के सामने उठता रहता है, लेकिन शहरी क्षेत्रों में चुनाव के समय ग्रामीण क्षेत्रों जैसी समस्याएँ नहीं होती हैं, बल्कि शहरों में टूटी-फूटी, धूल उड़ाती,खस्ताहाल सड़कें मुख्य मुद्दा बनती हैं. शहर में सड़कों के निर्माण इतने बढ़िया होते हैं कि हर पाँचवें महीने में फिर से पैचवर्क करना पड़ता है. इस तरह का पैचवर्क सिर्फ सड़कों पर ही नहीं होता बल्कि हर विभाग में भिन्न-भिन्न तरीकों से पैचवर्क किया जाता है. आजादी के बाद से ही यह कला बहुत फली-फूली है.

शहर के नाम के आगे स्मार्ट सिटी का तमगा तो लगा देते हैं, लेकिन रोड के गड्ढे तब भरते हैं; जब तक कोई राहगीर उस गड्ढे में गिर नहीं जाता और उसका फोटो अखबार में छप नहीं जाता. फोटो छपने के बाद प्रशासन हरकत में आता है, और उस गड्ढे के पैचवर्क के नाम पर लीपापोती कर देते हैं. इस कला को चाँदी कूटना कला भी कहते हैं. लोक में चाँदी कूटना मुहावरा भी बहुत चलन में है. चाँदी का वर्क लगी मिठाई के डिब्बे का संबंध भी इसी कला से है.

सड़क का अच्छी तरह से डामरीकरण तब होता है; जब उस रोड पर कोई वीआईपी मूवमेंट होने वाला हो, यानी कोई बड़ा राजनेता निकलने वाला हो. राजनेता के जाते ही दूसरे दिन फिर से सड़क पर केबल तार बिछाने वाली, पाइप लाइन बिछाने वाली याकिसी न किसी अन्य कंपनी के टेंडर आर्डर निकल ही जाते हैं. अफसरों के कान पर जूं तक नहीं रेंगती, लेकिन राहगीरों को फूँक-फूँक कर कदम रखना पड़ता है.

किसी अफसर या राजनेता की तोंद निकली हुई हो, तो आप उन्हें यह नहीं कह सकते कि वे चाँदी कूट रहे हैं. अन्यथा वे नाराज हो सकते हैं. एक दफा, एक गाँव में ठीक ऐसा ही हुआ. गाँव में एक नए और ऊर्जावान विलेज डेवलपमेंट ऑफिसर आए. संयोग से उनकी तोंद बाहर निकली हुई थी. नरेगा में मेट का काम करने वाला एक युवक उनसे मजाक कर बैठा-क्या सर! लगता है बहुत चाँदी कूट रखी है!

उस युवक की बात पर साहब नाराज हो गए. उन्होंनेउससे नरेगा में उक्त मिस्टोल पर काम करने वाले लोगों का मस्टररोल मांग लिया. उस रजिस्टर में कई ऐसे नाम चढ़े हुए थे जो उस दिन मौके पर मौजूद नहीं थे. लेकिन प्रत्येक मिस्टोल की राशि हर महीने उनके खाते में स्थानांतरित हो रही थी. यह देख वीडीओ साहब आग बबूला होउठे.

उन्होंने मेट से कहा,यह सब क्या है? मैं तुम्हें ब्लैकलिस्टेड करवा दूँगा.

साहब की बात सुनते ही उसके हाथ-पाँव फूल गए. लेकिन तुरंत ही उसे गांधीजी याद आए .गाँधी जी के सामने अंग्रेजों को भी हथियार डालने पड़े थे. वह दौड़ा-दौड़ा गया और सुंदर पुष्पों से सजा एक गुलदस्ता और चाँदी का वर्क लगा मिठाई का डिब्बा ले आया. मिठाई पर चाँदी का वर्क देखकर साहब के चेहरे पर प्रसन्नता के भाव तैर आए. असमंजस की जगह सामंजस्य बना रहे और आगे से ध्यान भी रहे. कहते हुए,वे अपनी गाड़ी स्टार्ट कर जा चुके थे.

इधर नेताजी का भाषण भी खत्म हुआ .नेताजी मंच से उतरकर बाहर की ओर जाने लगे .कुछ क्रांतिकारी युवाओं ने जो वाकई में व्यवस्था में बदलाव चाहते थे; उन्होंने फिर से दुष्यंत का दोहराव करते हुए, अपनी बात नेताजी के कानों तक पहुँचाई, खास सड़कें बंद पड़ी हैं, तब से मरम्मत के लिए.. ये हमारे वक्त की सबसे सही पहचान है .नेताजी ने तिरछी नजर से उन युवाओं की तरफ देखा और गाड़ी में बैठकर आगे निकल गए.

रोड ठीक होगी, तब होगी. फिलहाल, टेंडर निकालने वाला अफसर जिंदाबाद! इंजीनियर, ठेकेदार जिंदाबाद! बिल पास करने वाला बाबू जिंदाबाद! सड़क पर गर्म-गर्म डामर डालते वक्त जिसके पैर झुलस गए; वह मजदूर भी जिंदाबाद! रोड पर भारी-भरकम रोलर चलाकर उसे समतल-सुंदर बनाने वाला भी जिंदाबाद! सब के सब जिंदाबाद! खस्ताहाल सड़कें भी जिंदाबाद जो अगली बार के चुनाव में फिर से बहस का मुद्दा बनेगी.

क्लास by बड़े भाई

कुछ अनसुना भी करिए

संदीप द्विवेदी
कवि/प्रेरक वक्ता/स्किल ट्रेनर

आपने कभी आटे में से चोकर निकालने वाली चलनी देखी है ? अगर आपका जवाब %हाँ% है तो आज आप जो समझेंगे वो जीवन भर आपके काम आयेगा.

छोटे भाई , सुनना और न सुनना हमारे वश में नही हैं क्योंकि हमारे कान जितनी दूरी तक सुन सकते हैं वो सुनेंगे ही. लेकिन जो हम सुनते हैं उस पर यदि हम आटे वाली चलनी की तरह, हर सुनी हुई बातों पर प्रतिक्रिया देने से पहले अपनी बुद्धि का उपयोग करें तो उससे आटे से जैसे चोकर अलग हो जाती है, वैसे ही हम भी बुद्धि के उपयोग से बहुत सी फ़िज़ूल की बातों प्रतिक्रिया देने से बचे रहेंगे और अपने लक्ष्य की ओर बिना भटके बढ़ते रहेंगे.

ऐसे भी समझिए कि पुलिस वालों के हाथ में जो वाकी टाकी होता है, उसमें चारों तरफ से आ रही बातों पर वो तब तक प्रतिक्रिया नही देते जब तक उनसे जुडी कोई बात न हो . सच कहा न ?

इसी तरह आप भी चारों ओर से आ रही तरह तरह की बातों को अनसुना करिये. हाँ, कई बार कुछ बुरा सुनकर या कोई बात ऐसी होती है कि रहा नही जाता लेकिन यही तो धैर्य है और आपकी बुद्धि का कौशल है कि आप दूर तक अपना भला बुरा सोचकर प्रतिक्रिया दें .

यकीन मानिये, जीवन की आधी मुसीबत चाहे वो पारिवारिक हो , चाहे व्यावसायिक हो या सामाजिक हो, सब बिना सोचे समझे हर बात पर अपनी राय रखने से है. कुछ अनचाहा सुनकर भी अनसुना करने की आदत डालिए. कहाँ तक, कब तक किसी से भिड़ते रहेंगे .

यह सब तो चलता ही रहेगा. आप लक्ष्य से भटकेंगे और बेकार की बातों में अपनी प्रतिक्रिया देने में समय बरबाद करेंगे. मुझे नहीं लगता आपको इससे कुछ हासिल नही होगा. जीवन में सुखी रहने के लिए कुछ सुनकर बिना प्रतिक्रिया के भी रह जाने दिया करिये. हर बात पर आपकी प्रातक्रिया ज़रूरी नही होती और न हि आपका कुछ बिगड़ रहा होता है. बस, यही कहना था.

लघु कथाएं

दिल से दी दुआ

सुरेखा सरोदे

आज सुषमा खो गई थी अपने बचपन में, सालों पीछे... पुराना घर, मोहल्ला, पड़ोसी, और वे पुराने रिश्ते जो अब याद बनकर रह गए हैं.मन भारी था, आंखें नम थीं. एक चुप सी उदासी उसके अंतर्मन में गूंज रही थी. दिल में दुआएं और आशीर्वाद के अलावा अब कहने को कुछ नहीं बचा था.

मन ही मन वो सोचती रही, कितनी जतन से उसने हर रिश्ते को सहेजा, संवारा... और कितनी आसानी से लोग उन्हीं रिश्तों को रौंदते चले गए. क्यों उसके आत्मसम्मान ने कभी रिश्तों के बीच दीवार नहीं खड़ी की ?

क्यों उसने हर बार अपने स्वाभिमान को पीछे रख दिया, सिर्फ इसलिए कि रिश्ते बचे रहें ? हर रिश्ता उसने सिर माथे रखा, दिल से निभाया...

लेकिन बदले में उसे क्या मिला ?

आज फिर उसने खुद को समझाया - बस, अब और नहीं.

आज उसके भीतर उसका स्वाभिमान भी जाग उठा, और थोड़ी सा 'मैं' भी.

थक चुकी थी वह, हर बार रिश्तों की गांठ खुद ही सुलझाते-सुलझाते.

आज उसके छोटे भाई अनुज का जन्मदिन था.

बचपन की यादें सजीव हो उठीं, मां का लाड़, बहन का फर्ज़, और उस छोटे भाई के लिए दिल में बसी ममता. लेकिन फिर वही सवाल भीतर से झकझोर गया -क्या रिश्ते इतने बदल जाते हैं ?

दो साल पहले का वो दिन याद आया, कितने प्यार से केक बनाकर ले गई थी.

बुलाने पर भी अनुज टाल गया था.

मां ने भी आवाज़ दी थी... पर वह आवाज़ शायद उसके कानों तक पहुंची ही नहीं.

नहीं आया वो. सुषमा की आंखों में पुराने किस्से उभर आए,जब उसने अपने आत्मसम्मान को पीछे रखकर, बार-बार रिश्तों को बचाने की कोशिश की. लेकिन आज... आज वही दिन था और वह इंसान थी, दिल तो पिघलता ही है. पर आज दिल और दिमाग की लड़ाई में, दिमाग ने पहली बार जीत ली.

वो सुषमा, जो हमेशा दूसरों के लिए केक लेकर जाती थी, आज चाहकर भी कुछ नहीं बना पाई. चाहकर भी रिश्ते को नहीं सहेज पाई. चाहकर भी उसके मुंह से एक शब्द तक नहीं निकल पाया. आज उसे अहसास हो चुका था ,खून के रिश्ते भी कभी-कभी पानी से ज्यादा हल्के हो जाते हैं.

जब लोग दूसरों के बहकावे में आकर अपनी समझ और भावनाएं खो देते हैं.

क्या रिश्ते सिर्फ लेने का नाम हैं ? क्या देने का कोई मूल्य नहीं ?

आज सुषमा को यह भी समझ आ गया था रिश्तों को बचाने की जद्दोजहद कभी एकतरफा नहीं चलती.

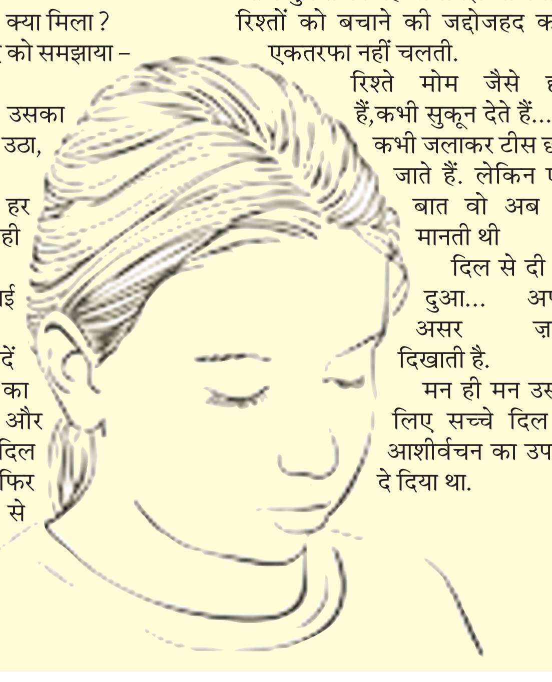

रिश्ते मोम जैसे होते हैं,कभी सुकून देते हैं... तो कभी जलाकर टीस छोड़ जाते हैं. लेकिन एक बात वो अब भी मानती थी

दिल से दी गई दुआ... अपना असर ज़रूर दिखाती है.

मन ही मन उसके लिए सच्चे दिल से आशीर्वचन का उपहार दे दिया था.

बाबूजी

मंगला सरोशे

बाबूजी जैसे ही जूते पहनकर बाहर निकलने लगे, तभी बहू सीमा ने झोला थमाते हुए कहा, बाऊजी, सब्ज़ी लेते आइए.

बाबूजी ने चुपचाप झोला थामा, पैसे तो थे नहीं, सीमा ने रु. 500 का नोट थमाकर कहा, ये लीजिए.

ठीक है बहू, कहकर वे निकल गए.

उनके जाते ही सीमा के होठों पर एक कुटिल मुस्कान आ गई. वह सोचने लगी, हमेशा कहते रहते हैं पैसे नहीं हैं, पेंशन तो छुपाकर रखते हैं. अब लौटेंगे तो हिसाब लूंगी.

बाबूजी थकते-हांफते, झोला भर सब्ज़ी लेकर लौटे. भीतर आते ही उन्होंने थैला एक ओर रखा और धीमे स्वर में कहा,

बहू... अगर चाय मिल जाए, तो थोड़ा सुकून मिल जाए.

सीमा ने कुछ देर बाद चाय टेबल पर रख दी और बिना कुछ कहे चली गई.

चाय में दूध की एक बूंद भी नहीं थी. बाबूजी की आंखें नम हो गईं.

यह कोई पहली बार नहीं था. सीमा अक्सर उनके साथ ऐसा व्यवहार करती थी, जैसे वह अपने पिता जैसे ससुर को बोझ समझती हो.

बेटा विजय इन बातों से अनजान था.

घर का किराया, बिजली बिल, साल भर का राशन, सब बाबूजी ही भरते थे. वो कहते थे, घर में अनाज भरा हो, तो लक्ष्मी का वास होता है.

एक सुबह, जब सब नाश्ते पर थे, विजय ने पूछा, सीमा, बाबूजी की थाली में छेना क्यों नहीं दिया ?

सीमा बोली, एक लीटर दूध में क्या-क्या करूं ? इस महीने दूध का हिसाब भी नहीं मिला.

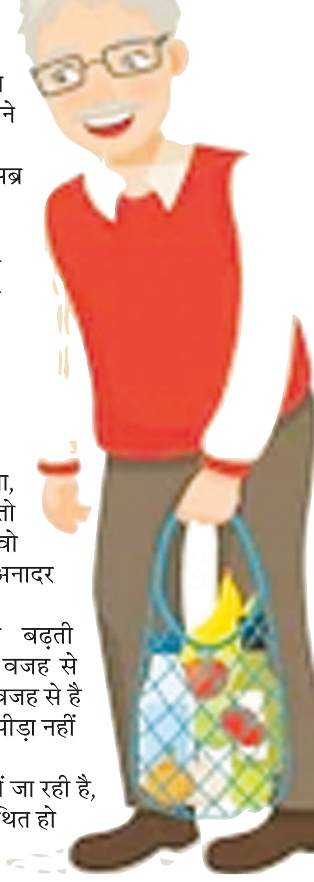

अगले दिन से विजय खुद दूध लाने लगा.

सीमा तिलमिला गई, अपनी कमाई बाबूजी पर ही लुटा दोगे !

अब वह रोज विजय को उल्टा-सीधा सुनाने लगी.

एक दिन विजय का सब्र टूट गया.

वह बोला, चाय में दूध नहीं, खाने में सूखी रोटी, 80 साल के बुज़ुर्ग से सब्ज़ी उठवाती हो... तुम उनके बेटे की पत्नी हो, इतना भी नहीं समझतीं ?

सीमा शर्मिंदा हो गई, रोते हुए माफी मांगने लगी.

विजय ने सही कहा था, अगर बेटा समझदार हो, तो बहू में भी हिम्मत नहीं कि वो उसके माता-पिता का अनादर करे.

आज वृद्धाश्रमों की बढ़ती संख्या सिर्फ बहुओं की वजह से नहीं, बल्कि उन बेटों की वजह से है जो अपने माता-पिता की पीड़ा नहीं समझते.

यह पीढ़ी किस दिशा में जा रही है, यह सोचकर मन बेहद व्यथित हो जाता है.

विषैला

अशोक वाधवाणी

जुगनू ने छुट्टी का दिन होने के कारण कुछ ज़्यादा ही शराब पी रखी थी. सुबह-सवेरे शराब के नशे में धुत्त होकर भटकते-भटकते जंगल जा पहुंचा. लड़खड़ाते कदमों से आगे बढ़ ही रहा था कि अनजाने में एक ज़हरीले सांप पर उसका पांव पड़ गया. सांप ने क्रोधित होकर जुनून के पांव पर जोरों से डसा और तेजी से भागने लगा.

जुगनू गुस्से से तिलमिलाया. उसने बड़ी तत्परता से, भागते हुए सांप को पीछे से मज़बुती से पकड़ा. जोर लगाकर अपने दातों से सांप को 7-8 जगहों पर बड़ी बेदर्दी से काटा. सांप के शरीर से खून बहने लगा. यह देखकर जुगनू बेहोश होकर ज़मीन पर गिर पड़ा.

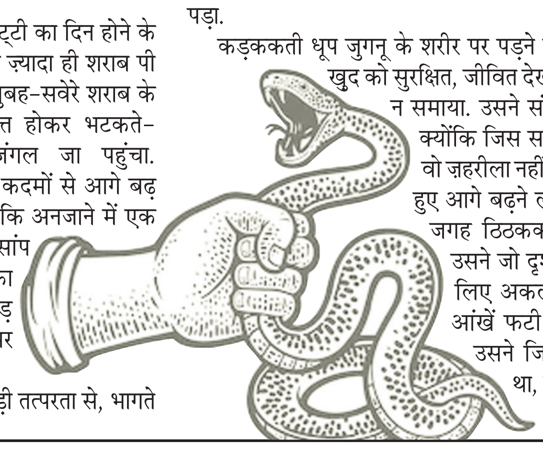

कड़ककती धूप जुगनू के शरीर पर पड़ने से उसे होश आया. खुद को सुरक्षित, जीवित देखकर खुशी से फूला न समाया. उसने संतोष की सांस ली. क्योंकि जिस सांप ने उसे डसा था, वो ज़हरीला नहीं था. उछलते-कूदते हुए आगे बढ़ने लगा. अचानक एक जगह ठिठककर खड़ा हो गया. उसने जो दृश्य देखा, वो उसके लिए अकल्पनीय था. उसकी आंखें फटी की फटी रह गई. उसने जिस सांप को काटा था, वो मरा पड़ा था.

कविता

डॉक्टर रेखा दशोरा

जग जननी

विश्व की श्रेष्ठ कृति हो,
नारी तुम जग की जननी हो ,
तुमसे ही स्वर्ग है सम्भव
तुम अमृत पय निर्झरणी हो.

जिसे सृजन का ईश्वर ने ,
दिया कोख उपहार ,
रक्त मांस अपना देकर ,
करती जीवन का संचार .

कुंठा ग्रसित मानसिकता हो,
या लालच का व्यापार
कैसे कर सकती हो तुम,
किसी जीवन का संहार .

अधोपतन स्वयं के चरित्र का ,
यह तो आधुनिकता नहीं कहलाती ,
विलास तृष्णाओं में लिपटी नारी
सभ्य समाज में नहीं पूजी जाती.

प्रगति विकास या बराबरी में ,
नैसर्गिक गुणों का न त्याग करो,
ममता ,दया, करुणा को न छोड़ो,
विदुषी बन जन कल्याण करो .

शास्त्रार्थ कर गार्गी ने प्राचीनकाल में
याज्ञवल्क्य को चकित किया था,
राधा और मीरा ने कृष्ण को ,
प्रेम , भक्ति से द्रवित किया था .

दर्शन की वे परंपराऐं
इस युग में स्थापित कर दो,
विश्व की श्रेष्ठ कृति हो तुम ,
पुन: इसे प्रमाणित कर दो .

अवसर मिले तुम्हें प्रगति के ,
सदा आगे बढ़ते जाना है ,
गर्व करें हर मानव तुम पर,
ऐसा शिखर तुम्हें पाना है.

पुस्तक समीक्षा

कर्ज़ के छलावे में छलते हमारे अन्नदाताओं की व्यथा-कथा

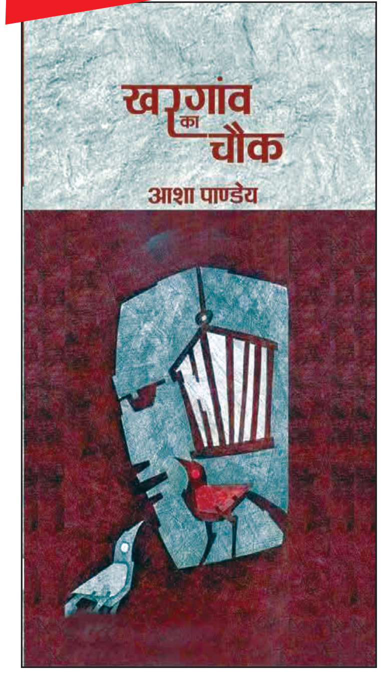

मनीष वैद्य

कहने को कहा जाता है कि हमारा देश कृषि प्रधान है, कभी जहाँ के 70 प्रतिशत लोग किसान हुआ करते थे, जिन्हें देश की अर्थव्यवस्था में 'रीढ़ की हड्डी' कहा जाता रहा. उससे भी एक क़दम आगे बढ़कर इन्हें अन्नदाता निरुपित करते हुए बताया गया कि सारी दुनिया की भूख इनकी मेहनत से ही मिटती है. इनके ही हाथों उपजे अन्न से हमारी थाली में रोटी आती है. किसी दिन किसान अपने खेतों में हल नहीं जोतेंगे तो हमारी भूख का क्या होगा. यह सब कहे-सुने जाने के बाद भी आज हमारे ये 'अन्नदाता' सबसे बुरे दौर में हैं.

इससे बुरी हालत और क्या होगी कि कर्जों के छलावे में छले जा चुके इन किसानों को अपनी जान देना पड़ रही है. हज़ारों किसानों की ज़िंदगियाँ दाँव पर हैं. खेती की ज़मीनें उनके हाथो से फिसलती-बिकती जा रही हैं. इस पूरी व्यथा कथा को केंद्र में रखते हुए आशा पाण्डेय का ताज़ा उपन्यास 'खरगाँव का चौक' इन सब सवालों पर विस्तार से बात करता है, इसकी जड़ों तक जाता है. सवाल खड़े करता है और अपने तईं एक संभव विकल्प की दिशा भी सुझाता है. हिन्दी उपन्यासों में किसानों की समस्याओं पर लिखे जाने वाले उपन्यासों की एक सुदीर्घ परम्परा है, जो आज भी जारी है. यह उपन्यास उसी कड़ी में आज की बात साफ़गोई से कहता है.

उपन्यास हमें बताता है कि हमारी भूख मिटाने वाले किसान और उनके परिवार भूखों मरने की कगार पर हैं. आज़ादी के 77 सालों बाद भी तब से अब तक तमाम सरकारी कोशिशों और नीतियों का ज़मीनी असर गाँव में बैठे किसान तक नहीं पहुँच सका है. बल्कि वह और भी दयनीय होता जा रहा है. महाजन बदल गए, खेती-बाड़ी के तौर-तरीके बदल गए, उपज बदल गई हल और बैलों की जगह ट्रेक्टरों ने ले ली, कुएँ-तालों की जगह बोरवेल ने ले ली पर दुर्भाग्य से किसान की माली हालत बद से बदतर होती गई. हरित क्रांति के बाद खेती को आधुनिक बनाने और उसे व्यवसाय की शक्ल देने के प्रयासों ने भारतीय किसानों की कमर तोड़ दी है. महंगे बीज, ऊँचे दामों के कीटनाशक, रासायनिक खादों और कुएँ-कुण्डी छोड़कर बोरवेल की अनिवार्यता ने ज़्यादातर किसानों को कर्ज़दार बना दिया. रही-सही कसर कर्ज़ बाँटने वाली बैंकों, बाज़ार और उसके दलालों ने पूरी कर दी.

जिस किसान की कड़ी मेहनत, साहस और ज़िद्दी जिजीविषा ने कभी प्रकृति तक से हार नहीं मानी, वह इन बैंकों, अफ़सरों, दलालों और बाज़ार के धन्ना सेठों की संगठित तिकडमों से 'हार' बैठा. कई किसान तो इस कुचक्र में ऐसे घिरे कि उन्हें इस 'अँधेरी सुरंग' से बाहर निकलने का कोई रास्ता तक नहीं मिला. उनके सामने एक ही राह बची- आत्महत्या कर अपना जीवन ख़त्म कर देने की. इन आत्महत्याओं से वे किसान तो चले जाते हैं लेकिन उनका पूरा परिवार और गाँव किस तरह परेशान होते हैं. यह कोई नहीं सोचता. हाँ, रस्मी तौर पर मुआवजे और अफ़सरों- राजनेताओं के गाँव आने और आरोप- प्रत्यारोप लगाने का सिलसिला ज़रुर कुछ दिनों तक चलता है और बाद में सब ठंडा पड़ जाता है. शर्म की बात तो यह है कि इन सबके बावजूद कई परिवारों को मुआवजे की रकम तक नहीं मिल पाती या दफ्तरों-कचहरी में जाते-जाते चप्पलें घिस जाने की हद तक कोशिशों से औनी-पौनी ही मिलती है.

खरगाँव का चौक (उपन्यास)
आशा पाण्डेय
मूल्य- 400 रुपए
वनिका पब्लिकेशन, नई दिल्ली

संपादकीय बोर्ड | प्रबंध संपादक : सुमीत माहेश्वरी, समूह संपादक : क्रांति चतुर्वेदी